North Asian International Research Journal of Social Science & Humanities

IRJIF: 3.015

ISSN 2454-9827 Vol. 7, Issue 2 February-2021

Index Copernicus Value: 57.07 DOI NUMBER: 10.6947/2454-9827.2020.00009.9 Thomson Reuters ID: S-8304-2016

A Peer Reviewed Refereed Journal

MARKET DEVELOPMENT STRATEGIES AND PERFORMANCE OF LOCAL FIRMS IN CRISIS: THE REALITIES OF COSMETIC FIRMS IN BAMENDA-CAMEROON

[1]NJOWIR LEONARD WIRSIY AND [2]LEKEUFACK VALERIE FONKEM

[1](Corresponding author)

[1&2]*National Polytechnic University Institute Bamenda-Cameroon, School of Business Finance and management*

1. INTRODUCTION

In every business sector operating either under the service industry or the manufacturing industry, their prime focus is to excel in every domain be it at the level of profit maximization, at the level of market expansion or having a competitive advantage over competitors. All these objectives cannot be accomplished without having a stable environment both internally and externally. In other words, company in crisis will obviously require some "grace" to survive and achieve the afore stated objectives. Crisis here refers to an unexpected, unplanned situation or rather, an event that threatens the stability of a business. It is often noticed thus that in periods of crisis, companies put extra efforts to sustain their businesses and these extra efforts we are talking about here are strategies

Market development strategy is one of the four alternative growth strategy brought about by Ansoff (1987). We intend to see what impact it has on performance of local firms in times of crisis. Ansoff (1987) defines market development as taking current products and finding new markets achieved through opening up previously excluded market segments, new market, distribution and entering new geographic markets. McCarthy (1960) developed possible methods of implementing market development strategy as moving the present product into new geographical areas and expanding sales by attracting new markets.

From these definitions, we can have a view of the fact that when an existing market no longer accepts an existing product, or an existing product has lost its market position in that market due so many probable reasons, the most appropriate strategy to use is definitely the market development strategy. Furthermore, from the researcher's observations on what is happening to the business environment in Cameroons' North West region, and Bamenda in particular where these findings were carried out, it was noticed that businesses were losing their markets and

NAIRJC : A Journal Of Social Science and Humanities

NAIRJC : Past Issues

Volume 7 - Issue 2 - February - 2021

S.No.	Article Title	Article By	File	Page No.
1	MARKET DEVELOPMENT STRATEGIES AND PERFORMANCE OF LOCAL FIRMS IN CRISIS: THE REALITIES OF COSMETIC FIRMS IN BAMENDA-CAMEROON	NJOWIR LEONARD WIRSIY AND LEKEUFACK VALERIE FONKEM		01-19
2	MAKING NEW INDIA: THIS IS HIGH TIME FUNDAMENTAL DUTIES OF CITIZENS ARE MADE MANDATORY	DR. BIPIN KUMAR THAKUR		20-31
3	EXAMINATION ANXIETY AMONG YOUTH: A COMPARATIVE STUDY	NANDITA SARKAR		31-42
4	PANDHARINATH SITARAM PATIL: LIFE AND WORK	DR. SANTOSH BANSOD		43-47
5	The changing nature of Indian music and music education	Sushil Wawarkar		48-55

© 2022 North Asian International Research Journal Consortium. All Rights Reserved.

IRJIF I.F. : 3.015

North Asian International Research Journal of Social Science & Humanities

ISSN: [illegible] Vol. [illegible] Issue-2 February-2021

Index Copernicus Value: 57.07 Indian Citation Index Thomson Reuters ID: S-8304-2016

भारतीय संगीत का बदलता स्वरूप और संगीत शिक्षा

सहा. प्रा. सुशील वावरकर (संगीत विभाग)

श्री गणेश कला महाविद्यालय,

कुंभारी, अकोला, (महाराष्ट्र)

मोबा.9881477803

Email:- sushilwawarkar@gmail.com

सारांश :- प्रस्तुत शोध लेखन में प्राचीन काल से भारतीय संगीत शिक्षा और उसमें दिन-ब-दिन होते रहे परिवर्तन, उसका बदलता स्वरूप, संगीत शिक्षा पद्धति के बारे में विस्तृत रूप से जानकारी दी है। वैदिक कालीन संगीत के अंतर्गत सामवेद की शैलियां, प्राचीन ग्रंथों में वर्णित गितिया, मध्य युग के ध्रुपद की बाणीया, तद्नंतर ख्याल के प्रचलन के बाद घराना पद्धति द्वारा संगीत शिक्षा, उनके गुण दोष, तत्पश्चात शिक्षण संस्थाओं के माध्यम से संगीत शिक्षा, उसका प्रसार - प्रचार और संबंधित शिक्षा देने में उत्पन्न कठिनाइयों और उसके गिरते हुए स्तर की कारण मीमांसा और उन समस्याओं का निराकरण करने हेतु सुझाव, शासन से अपेक्षाएं आदि के बारे में विस्तृत रूप से वर्णन किया है।

मुख्य बिंदु :- १) घराना संगीत शिक्षा पद्धति

२) शिक्षण संस्थाओं के माध्यम से संगीत शिक्षा पद्धति

प्रस्तावना :- भारतीय संगीत में गुरु का स्थान सर्वोच्च माना गया है। गुरु शिष्य परंपरा संगीत शिक्षा की सबसे प्राचीनतम एवं सर्वश्रेष्ठ प्रणाली मानी जाती है। संगीत की शिक्षा वैदिक काल से ही गुरु मुख से सिना-ब-सिना तालीम प्राप्त करने की प्रथा है। गुरुकुल मैं रह कर ही गुरु की सेवा करना, गुरु के कठोर नियमों का पालन करते हुए उनके अनुशासन में रहकर संयम से और नियम से जीवन बिताते हुए साधना करना एवं गुरु द्वारा दी गई शिक्षा को पूर्णता कंठस्थ करना ही शिष्य का धर्म था, और शिक्षा का एकमात्र साधन था। परंतु समय के साथ भारतीय संगीत में परिवर्तन होता रहा। जिस

प्रकार भारतीय संगीत का दिन-ब-दिन स्वरूप बदल रहा है उसी तरह संगीत की शिक्षा पद्धति में भी परिवर्तन होता रहा है और निरंतर होता रहेगा।

वैदिक संगीत के अंतर्गत सामवेद की शैलियां- रामायणी, जैमिनी, कोशुभी इ. रही है। प्रत्येक शाखा का गायन करने वाले गायक अलग अलग हुआ करते थे। इन गायकों की परंपराओं को पद्धति, शैली या शाखा कहे तो सामान्य रूप से घरानों जैसा ही आभास होता है। मध्य युग में ध्रुपद की बाणीया- नौहार,खंडहार, गोबरहार, डागुर प्रचार में थी। इससे पूर्व प्रबंध गायन की परंपरा थी। प्राचीन ग्रंथों में वर्णित गीतियों की तरफ ध्यान दें तो उनके प्रमुख पांच तो कहीं सात भेद बताए गए हैं। शुद्धा, भिन्ना, गौडी, बेसरा, साधारणी या गौड़ा, रागगीति, साधारण भाषा, विभाषा (ब्रुहदेशी) में वर्णित है। मध्य युग में ध्रुपद की चार प्रमुख बानियों के बाद ख्याल गायन का प्रचलन हुआ जो आज तक हमें दिखाई पड़ता है।

प्राचीन काल में सभी प्रकार की शिक्षा आश्रमों द्वारा दी जाती थी। उसीके अंतर्गत संगीत की भी शिक्षा दी जाती थी। तथा उस परंपरा को संप्रदाय कहा जाता था। कालांतर में संगीत के संदर्भ में घराना शब्द का प्रयोग होने लगा। उस समय घरानों का कोई विकल्प नहीं था अतः घराने की शिक्षा ही सर्वोत्तम मानी जाती थी। संगीत का संरक्षण घरानों पर ही निर्भर हो गया था। उस समय यह स्थिति थी कि सभ्य समाज में संगीत के प्रति आकर्षण तो था किंतु कोई भी अच्छे भले घर के लोग संगीत सीखने और उसे अपनाने को तैयार नहीं होते थे। लोगों द्वारा संगीत को सीखना तो दूर श्रवण करना भी विलासिता का अंग माना जाता था। और यह समझते थे कि संगीत सुनने से घर के लड़के बिगड़ जाएंगे। ऐसी परिस्थिति में घर की कन्याओं का संगीत सिखाने की बात को स्वप्न में भी नहीं सोची जा सकती थी। किंतु समय ने करवट बदली और संगीत के प्राचीन गौरव को समाज में सम्मानजनक स्थान दिलाने के लिए संगीत उद्धारक पं. विष्णु दिगंबर पलुस्कर तथा पं. विष्णु नारायण भातखंडे जैसी महान विभूतियां आगे आई। जिनके दिन रात के अथक परिश्रम के फलस्वरूप समाज में संगीत के प्रति पुन्हः जागृति उत्पन्न होने लगी और पं. विष्णु दिगंबर पलुस्कर जी के विशेष प्रयास से घर-घर में संगीत सीखने की शुरुआत होने लगी। धीरे धीरे यह स्थिति आई कि संगीत सीखने वालों की संख्या बढ़ने लगी, तब संगीत सीखने हेतु घराना व्यवस्था अपर्याप्त तथा दोषपूर्ण लगने लगी। सबसे बड़ा दोष यह था की घरानों में अपने पुत्र-पुत्री व नाते रिश्तेदारों को ही सिखाया जाता था। या अन्य छात्रों से अधिक महत्व दिया जाता था। ज्रिससे सामान्य जनों के प्रति

उपेक्षा पूर्ण व्यवहार होता था। परिणाम स्वरूप धीरे धीरे घरानों का स्थान विद्यालयों ने लेना प्रारंभ कर दिया। इस प्रकार क्रमशः शिक्षण संस्थाओं की संख्या बढ़ने लगी। जिसका श्रेय दोनों विष्णु पंडितों को जाता है। पंडित विष्णु दिगंबर पलुस्करजी न प्रायोगिक पक्ष संभाला। तो पंडित भातखंडे जी ने संस्थाओं को संगीत की पुस्तकें उपलब्ध करायी।

घराना पद्धति द्वारा संगीत शिक्षा :- जिस प्रकार से मानव जीवन में विकास के लिए घर परिवार महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, ठीक उसी प्रकार से संगीत में ऊंचा स्थान पाने के लिए किसी एक घराने की तालीम आवश्यक है। प्रत्येक घरानों के अपने कुछ विशेष अनुशासन, बंधन, नियम होते हैं। जिसका पालन करके विद्यार्थी एक मार्ग पकड़ उसी पर आगे बढ़ता है। वह अपनी मंजिल पर पहुंचता है। घराने से विहीन व्यक्ति भटकता हुआ राही ही होता है, जो यात्रा तो बहुत करता है परंतु अपनी मंजिल पर नहीं पहुंच पाता है। विभिन्न घरानों की शरण लेने से संगीत शिक्षा में मत-मतांतर होने के कारण विद्यार्थी कभी भ्रमित हो जाता है। अतः संगीत शिक्षा एक ही घराने के माध्यम से होना आवश्यक है। प्रत्येक घराने में स्वर लगाने का ढंग आवाज का उतार-चढ़ाव कला चातुर्य तथा कंठ चातुर्य अपने ही ढंग का होता है। प्रतिभाशाली और असाधारण संगीतज्ञ ही इसका निर्माण करके उसे गायन कला के सांचे में ढालता है। प्रत्येक प्रतिष्ठित गायकी का एक सुव्यवस्थित और परिमार्जित रूप होता है। उसकी विशिष्ट तकनीक होती है। अर्थात जिस कारण विशिष्ट अलंकारों, वर्णों, गमक तथा मुर्की आदि के प्रयोगों की प्रबलता के कारण अथवा कंठ ध्वनी के लगाओ में किसी विशेष प्रणाली के कारण गायकी में विभिन्नता ले आती है। अतः स्वर समुदायों की संयोजन, तान आदि का गुंथाव, लयकारी के विविध प्रयोग, तानों के विशिष्ट प्रकार आदि घरानों की विशेषताओं के रूप में उभर आते हैं। यह सही है कि घराना के अंतर्गत जो शिक्षा प्राप्त होती है उनमें भले ही समय अधिक लगता है, किंतु गायकी की परिपक्वता तथा सफल मंच प्रदर्शन प्रस्तुत करना इत्यादि कुशलता पूर्वक सिखाया जाता है। किंतु यह भी है कि अत्यंत कड़े अनुशासन के चलते विद्यार्थी को किन्हीं आशंकाओं के निराकरण हेतु प्रश्न पूछने की छूट ना रहने से शिक्षार्थी की शिक्षा अधूरी एवं उलझनों से भरी होती थी। केवल खानदानी कहकर या हमारे घराने में ऐसा ही होता है कहकर सत्य बात को भुलाया नहीं जा सकता। भारतीय स्वस्थ परंपरा तो यह है कि विद्यार्थी अपनी शंकाओं को गुरु के सामने प्रकट कर सकता है, और गुरु शिष्य के प्रश्नों का समाधान करने का पूरा

प्रयत्न करता है। और यदि किसी प्रश्न का समाधान गुरु करने में समर्थ नहीं है तो वह उसे अन्य किसी विद्वान से शंका का समाधान करने हेतु प्रेरित करता है। अतः घरानों का यह दोष कभी-कभी छात्र की आगे चलकर नियुक्तियों या साक्षात्कार के समय विशेषज्ञों द्वारा पूछे गए प्रश्नों का समाधान अधिकांश घरानों से निकले व्यक्ति नहीं कर पाते हैं। और ऐसे ही व्यक्ति संस्थाओं में नियुक्त होने पर विद्यार्थियों के प्रश्नों से या तो बचना चाहते हैं या घराना और खानदान के नाम पर चुप कराने का असफल प्रयास करते रहते हैं। घरानों में कोई पाठ्यक्रम ना होने तथा शिक्षण अनियमित होने के कारण शिक्षार्थी का भविष्य अनिश्चित एवं संदिग्धावस्था के बीच झूलता रहता है।

शिक्षण संस्थाओं द्वारा संगीत शिक्षा :- शिक्षण संस्थाओं द्वारा संगीत शिक्षण पद्धति में कुछ अच्छी बातें भी है तो कुछ बुराई भी। अच्छा यह है कि हमें निश्चित अवधि में विभिन्न रागों, विभिन्न सिद्धांतों, विभिन्न शैलियों, विभिन्न घरानों की बंदिशों, शैलियों की विशेषताओं, विभिन्न प्रकार के मतों, विभिन्न विद्वानों द्वारा लिखित पुस्तकों का अध्ययन, विभिन्न गुरु अथवा किसी एक गुरु के अंतर्गत सीखने का शुभ अवसर अपनी प्रकृति तथा अपनी रुचि के अनुसार शैली व गायकी सीखने का शुभ अवसर प्राप्त होता है। जो घरानों में कम संभव हो पाता है। लेकिन यह भी सत्य है कि बहुत कम ऐसी संस्थाएं हैं जहां उपरोक्त प्रकार की सभी सुविधाएं प्राप्त हो सके। उचित शिक्षक न मिल पाने, समय की बाध्यता, विस्तृत पाठ्यक्रम को पूर्ण करने के बाद परीक्षाएं उत्तीर्ण करने की बाध्यता एवं निर्धारित प्रतिशत अंकों के प्राप्त न होने के कारण वांछित प्रगति रुक जाती है। या अपरिपक्व ही रह जाती है। अयोग्य शिक्षकों द्वारा शिक्षण, अनियमित कक्षाएं तथा आपसी खींचतान की राजनीति के कारण संस्थाओं की एवं शिक्षक की गरिमा घटी है, घट रही है। शिक्षक का उचित आचरण ना होने से शिष्य समुदाय में भी अनुशासनहीनता संगीत के उत्थान में बाधक बन रही है।

संगीत शिक्षा में उत्पन्न हो रही समस्याएं एवं उनके निराकरण हेतु सुझाव और समाधान :- हमेशा यह देखने में आता है कि घरानों से शिक्षा पाया हुआ व्यक्ति अच्छा कलाकार तो होता है, लेकिन यह आवश्यक नहीं कि वह अच्छे शिक्षक भी हो। उसी प्रकार शिक्षण संस्थाओं से शिक्षित व्यक्ति ज्ञान तो अच्छा रखता है, अच्छा लिख लेता है, अच्छा बोल लेता है लेकिन यह आवश्यक नहीं

कि वे अपनी कही गई बातों को एक अच्छे कलाकार के स्तर पर व्यावहारिक रूप से सिखाने अथवा प्रदर्शन करने में भी समर्थ हो। ऐसा भी नहीं है कि ऐसे गुरुओं की कमी है जो अच्छे शिक्षक होने के साथ-साथ अच्छे कलाकार भी है। इन सभी बातों से ऊपर यह विचारणीय है कि अच्छा ज्ञानवान और अच्छा कलाकार होना अवश्य ही सराहनीय एवं प्रतिष्ठा परक होता है। किंतु ऐसे विद्वान कलाकारों की सार्थकता तब सिद्‌ध होती है जब वह अपने ज्ञान युक्त कलात्मक रूप को अपने शिष्यों में उतारने का सार्थक प्रयास करें।

वर्तमान में संगीत की शिक्षा विद्यालय एवं विश्वविद्यालयों पर ही अधिकांश रूप से निर्भर है। अतः विश्वविद्यालयों के शिक्षकों पर यह नैतिक जिम्मेदारी आती है कि वे घराना एवं शिक्षण संस्थाओं के गुण दोष पर सुष्मता से विचार कर दोनों पद्‌धति के गुण को अपनाते हुए शिष्यों को शिक्षा प्रदान करें। और जो दोष हो उन्हें खुले और उदार मन से दूर करने का प्रयास करें। कुछ लोग अपने को खानदानी कहकर स्वयं को तो अंधकार में रखते हैं, साथ ही वे अपने घरानें की भी बदनामी कराते हैं। ऐसे शिक्षक अपनी संकुचित मानसिकता को त्याग कर योग्य विद्वानों से संपर्क करें तथा ऐसी पुस्तकों का अध्ययन करें जिनकी मान्यता संगीत के क्षेत्र में सम्मानजनक रूप से प्रतिष्ठित हो। विशेषकर रागों के संदर्भ में भ्रम तथा मतभेदों को विद्वानों से संपर्क कर दूर किया जा सकता है। और वहां किसी विशेष राग के संदर्भ में दो या तीन प्रकार की मान्यता हो तो वह अपने मत के राग रूप के साथ अन्य मत की भी जानकारी विद्यार्थियों को देना चाहिए। साथ ही अन्य मत को सम्मान देने हेतु प्रेरित करना चाहिए। ऐसी स्थिति प्रायः अत्यंत अप्रचलित रागों के साथ ही आती है। किंतु दुःख की बात है कि प्रचलित रागों के संदर्भ में भी व्याप्त अधूरा ज्ञान कथित शिक्षकों की संकीर्ण मानसिकता, आलस्यपन, शिष्यों के प्रति उदासीनता एवं अधूरा ज्ञान जिम्मेदार है।

यह अत्यंत कष्ट की बात है कि संगीत को छोड़कर अन्य किसी भी विषय में ऐसा नहीं है कि प्रायः एक गुरु या एक संस्था के अलावा किसी अन्य माननीय गुरु या संस्थाओं से संपर्क न किया जाए। पुस्तकालयों में विभिन्न प्रकारों की पुस्तकें इसीलिए रखी जाती है कि सभी प्रकार के मतों को जाने और अधिक से अधिक मान्यता प्राप्त सिद्‌धांतों को अपनाएं और दूसरों को बताए। गुरु शिष्य परंपरा को भी हम इस तरह से बनाए रख सकते हैं कि यदि किसी विद्यार्थी में विशेष क्षमता हो तो उसे सामूहिक कक्षा के अलावा अतिरिक्त समय देखकर उसकी प्रतिभा को विकसित किया जा सकता है। सभी शिष्यों की नियमित कक्षा ले और कुछ कमजोर और विशेष प्रतिभाशाली छात्र-

छात्राओं को अतिरिक्त समय देकर विद्यालय या घर पर उन्हें योग्य शिक्षक, कलाकार या शास्त्र के रूप में उभरने का अवसर प्रदान करें। ऐसा नहीं है की संगीत शिक्षण में व्याप्त विभिन्न समस्याओं को दूर नहीं किया जा सकता, इसे अगर दूर करने का सामर्थ्य है तो वह आज के युवा वर्ग में है। क्योंकि हमारे पूर्वजों ने एवं हम से बड़ों ने तो अपने समय में संगीत को काफी मुश्किलों से प्राप्त किया और उसे आने वाली पीढ़ी को हस्तांतरित भी किया है। किंतु आज इसे संभाल कर रखने व आने वाली पीढ़ी को सौंपने की जिम्मेदारी हम पर है। संगीत का शैक्षणिक स्तर सुधारने एवं इसकी समस्या निराकरण हेतु प्रमुख सुझाव यह है कि किसी गुरु से तीन-चार वर्षों तक संगीत सीखे या उच्चतर, माध्यमिक स्तर पर संगीत सीखे बिना स्नातक स्तर पर संगीत विषय चुनने की पात्रता नहीं होनी चाहिए। स्नातकोत्तर स्तर पर विशेष हेतु कड़े नियम बनाना चाहिए जिससे सर्वोच्च कक्षा अर्थात् स्नातकोत्तर स्तर पार करने पर वह एक योग्य एवं होनहार तथा अच्छा कलाकार बन कर निकलें। स्नातक स्तर की भी संगीत कक्षाओं में 40-45 मिनट के पीरियड की व्यवस्था ना होकर इस की समय अवधि कम से कम 2 घंटे तो होनी ही चाहिए। क्योंकि प्राचीन काल में संगीत की कक्षा में नित्य प्रति 8 घंटे अध्ययन-अध्यापन होता था। आज इतना लंबा समय तो नहीं दिया जा सकता है। किंतु एक कक्षा के लिए 2 घंटे का समय अवश्य ही होना चाहिए। शिक्षण संस्थाओं में संगीत के गिरते हुए स्तर को ऊपर उठाने के लिए शासकीय प्रयास जितने आवश्यक है उससे कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण है संस्थागत प्रयास एवं व्यक्तिगत प्रयास। आज संगीत की सभी शैक्षणिक संस्थाएं यदि इस पर गंभीर हो जाए तो निश्चित ही आज संगीत का स्तर अपने आप ही सुधर जाएगा। अतः संस्थाओं को अपने अपने स्तर पर समय-समय पर सेमिनारों, विचार गोष्ठीयां आयोजित करके स्व मूल्यांकन करना चाहिए। आज यदि संगीत से संबंधित सभी व्यक्ति एकजुट हो जाए तो निश्चित ही इसका शैक्षणिक स्तर ऊपर उठ जाएगा।

शासन से अपेक्षाएं :- शासन स्तर पर शास्त्रीय संगीत का स्तर ऊपर उठाने तथा जनसाधारण तक सुलभ कराने की दृष्टि से केंद्र सरकार तथा राज्य सरकारें यथासंभव प्रयास कर रही है। सरकार प्रतिवर्ष अनेकों प्रतिभावान छात्र छात्राओं को तथा उनके गुरुजनों को उनकी पात्रता अनुसार छात्रवृत्ति देती हैं। समय-समय पर जनसाधारण हेतु टीवी पर रेडियो पर शास्त्रीय संगीत के कार्यक्रम प्रसारित किए जाते हैं। किंतु केवल इतने मात्र से शास्त्रीय संगीत का स्तर नहीं सुधर सकता है।

अपितु शैक्षणिक संस्थाओं में संगीत के गिरते हुए स्तर को ऊपर उठाने के लिए आवश्यक है कि शासकीय स्तर पर यह प्रयास होना चाहिए की वह संगीत शिक्षण की समस्याओं पर विचार करें। तथा पाठ्यक्रम का अवलोकन कर पठन-पाठन की सुविधा ध्यान में रखें। तथा उसकी एकरूपता आदि पर विचार करें। उसे कार्यान्वित करने संबंधी योजनाओं पर विचार करें। इस प्रकार एक निश्चित समय में ही संपूर्ण शिक्षा पद्धति का अवलोकन किया जा सकता है। तथा गिरते हुए स्तर में सुधार लाया जा सकता है।

निष्कर्ष :- भारतीय संगीत का बदलता स्वरूप और संगीत शिक्षा का गिरता स्तर अगर हमें ऊंचा उठाना है तो शिक्षण संस्थाओं से योग्य शिक्षक, सफल मंच प्रदर्शक कलाकार तथा योग्य शास्त्रज्ञ, वक्ता एवं लेखक तैयार होने चाहिए। जिसके लिए सप्ताह में कम से कम 1 दिन शिक्षक एवं विद्यार्थी अपना व्यक्तिगत मंच प्रदर्शन या किसी संगीत विषयक पहलू पर सोदाहरण भाषण अवश्य प्रस्तुत करें। यदि आप यह व्यवस्था अपनाएंगे तो प्रत्येक शिक्षक के साथ-साथ प्रत्येक विद्यार्थी भी अपने विकास के प्रति स्वतः सचेत हो जाएगा। जिससे संगीत शिक्षण में व्याप्त अनेक समस्याओं का निराकरण संभव हो सकेगा और भारतीय संगीत का दिन-ब-दिन विकास होता रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

१) सक्सेना डॉ. मधुबाला, (१९९०), भारतीय संगीत शिक्षण प्रणाली एवं उसका वर्तमान स्तर, हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़

२) गर्ग लक्ष्मी नारायण, गर्ग मुकेश, (१९९५ जनवरी-फरवरी), संगीत शोध लेख अंक, संगीत कार्यालय, हाथरस

३) डॉ. पलनिटकर अलकनंदा, (२०००), शास्त्रीय संगीत शिक्षा समस्याएं एवं समाधान, आदित्य पब्लिशर्स

४) डॉ. लक्ष्मी नारायण गर्ग, (२०१२), संगीत निबंध सागर, संगीत कार्यालय, हाथरस

५) संगीत कला विहार ,अखिल भारतीय गांधर्व मंडल, मिरज

६) शर्मा डॉ. मृत्युंजय,(२००२), संगीत मैन्युअल, प्रकाशन एच.जी. पब्लिकेशन, न्यू दिल्ली

७) चक्रवर्ती डॉ.कविता, (२०१७),संगीत की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि, साइंटिफिक पब्लिशर्स, दयालबाग आगरा।